एक कहानी और एक गीत

तेजी ग्रोवर

IV

सन्दर्भ संवेदनशीलता

हम पहले 'कठिन प्रसंगों' की बात कर रहे थे। प्रवृतिस्थ मनुष्य की विशिष्ट कल्पना की सम्भावित बानगी के बारे में सोचने लायक बात यह है कि जीवन के काठिन्य और 'अनाथ' परिस्थितियों में खुद को पाकर लोक-कल्पना किस ओर चली जाती है। भाग्य, भविष्यवाणी, और मनुष्येतर प्राणि-जगत में आश्रय ढूँढ़ना लोक-कथाओं में आम बातें हैं। लेकिन सन्दर्भ इतने अलग-अलग होंगे कि किसी एकल फॉर्मूले को खोज पाना लगभग असम्भव जान पड़ता है। ए.के. रामानुजन अपने निबन्ध 'क्या सोचने का कोई भारतीय ढंग है?' में कहते हैं कि भारतीय संस्कृतियों में 'context sensitivity' यानी किसी सन्दर्भ-विशेष के प्रति संवेदनशील होने की प्रवृत्ति है। मिसाल के तौर पर कुछ लोग कर्म के सिद्धान्त को 'हिन्दू' या 'भारतीय' होने का पर्याय मान बैठते हैं। लेकिन रामानुजन ने अपने जीवन काल में जितनी भी

कन्नड़ कथाएँ जमा की थीं, उनमें से एक भी ऐसी नहीं थी जिसमें कर्म की कोई भूमिका रही हो हालाँकि सभी जातियों के लोग इन कहानियों को सुना रहे थे। ऐसी कहानियाँ उन्हें ज़रूर मिलीं जिनमें उपद्रवी बच्चों को डाँटते-फटकारते समय कहा जाता था – 'मेरे कर्मों का फल!' एक और मिसाल उद्धृत कर रामानुजन बताते हैं कि 'संदर्भ संवेदनशील' संस्कृति में आपको यह सुनने को नहीं मिलेगा कि 'अच्छे लोगों की मृत्यु छोटी उम्र में हो जाती है,' बल्कि शायद कुछ ऐसा कि 'अनाज की कोठरी मेरे भाई पर ही क्यों ढह गिरी?'

रामानुजन के कथा-संकलन में शामिल कहानी 'सर्पमाता' के एक अन्य उद्धरण से बात कुछ और स्पष्ट होगी। लेकिन पहले इस कहानी पर ज़रा गौर करें। सात भाइयों के एक परिवार की सबसे छोटी बहू के साथ पूरा परिवार बदसलूकी किया करता था। कारण यह था कि मायके के नाम पर उसका कोई नहीं था जो ससुराल वालों को उपहार आदि भेज सके। अन्ततः इस भलीमानस के करुणामयी व्यवहार के फलस्वरूप एक सर्पिणी इस हद तक कृपालु हो उठती है कि वह इस छोटी बहू को अपनी मुँहबोली बेटी बना लेती है। सर्प परिवार भूगर्भ में एक खज़ाने का मालिक है और वे सुअवसर देख मुनष्य रूप धारण कर अपनी मुँहबोली बेटी के ससुराल को अपने वैभव से सरासर अभिभूत कर देते हैं। प्रसव के लिए बेटी को वे सर्पलोक ले जाते हैं, जहाँ बेटी अपनी मुँहबोली माँ का प्रसव देखती है। प्रसव के समय नागमाता अपनी बेटी से कहती हैः

"सुनो बेटी, मैं तुम्हें एक बात बताना चाहती हूँ। इसमें डरने की कोई बात नहीं है। हम जानते हैं कि अगर हमारे सारे सपोले जी जाएँ तो दुनिया में सब गड़बड़ हो जाएगा। तब दूसरे जीवों का जीना दूभर हो जाएगा। उनके लिए चलना-फिरना भी मुश्किल हो जाएगा। इसलिए सपोलों के जन्म लेते ही माँ उन्हें खा जाती है। जो भाग जाते हैं वे ही बचते हैं। मुझे ऐसा करते देख तुम घबराना मत।"

लेकिन बेटी तो मानुसी ठहरी। अपनी मुँहबोली माँ को अपने अण्डों को लीलते हुए देख उसका मन जुगुप्सा से भर जाता है, उसके हाथ से दीया गिर जाता है और अँधेरे में दो सपोले निकल भागते हैं। माँ उनकी पूँछ ही खा पाती है।

भूमिका में इस कहानी के बारे में रामानुजन की टिप्पणी हैः 'अभाव की पूर्ति वह (छोटी बहू) पाताल में रहने वाले नाग-परिवार से करती है, जो उसे धन-धान्य और स्नेह से मालामाल कर देता है। हम सबके भीतर जो अनाथ है उसके लिए रहस्यमय भूमिगत परिवार का अद्भुत स्वप्नचित्र है इस कहानी में।' (कहानियों के अनुवाद कैलाश कबीर)।

जो दो और बातें इस कहानी के माध्यम से स्पष्ट होती हैं, वे हैं – किस्सागोई के विशिष्ट संदर्भ, तथा मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों के बीच के सुनम्य सम्बन्ध। जिस ममत्व से भरकर नागमाता अपनी मनुष्य बेटी को सर्पों के जीवन से परिचित करवाती है, वही सर्पिणी जैसे जगत की ही जननी होकर अपने सपोलों को खाकर जगत की रक्षा करती है। मनुष्य बेटी स्नेह और श्रद्धा से सराबोर होने के बावजूद बेतरह घबरा जाती है। सर्पलोक में इस प्रसव की साक्षी अन्य छह बहुएँ नहीं हो सकती थीं, करुणा के अभाव में वे सर्पिणी का ममत्व ग्रहण करने की सुपात्र ही नहीं हैं। बातपोश या किस्सागो कब, कहाँ, किस अवसर पर कथा किसे सुनाएगा, ये चीज़ें भी 'सन्दर्भ संवेदनशील' हैं – जैसे यह बात कि मनुष्य-मूल्य किस प्रकार से सर्प-मूल्यों से भिन्न हैं। लेकिन मत्स्यकन्या के समान इन सर्पों को दैहिक रूपान्तरण से कोई पीड़ा नहीं होती। सर्प के बिल में घुसकर रहने में बेटी को किसी भी किस्म की कोई असुविधा नहीं होती। मनुष्य से इतर प्राणी, मनुष्य से हेय भी नहीं हैं। इसलिए लोक में यह घोषणा नहीं की जाती कि अब मैं सर्पों के संसार में जाकर वास करूँगी।

पुनर्जन्म की कहानियों का भी लोक-कथा संचयन में विशेष स्थान नहीं है। अपवाद-स्वरूप एक तमिल कहानी में एक भविष्य-दृष्टा ब्राह्मण यह जान लेता है कि वह मरणोपरान्त मस्तक पर सफेद धब्बे वाले सुअर के रूप में पैदा होगा। वह अपने शिष्यों से प्रार्थना करता है कि वे उसे पहचानते ही कृपापूर्वक उसका वध कर दें। शिष्य गुरू की मनोदशा देख पेरशान हो उठते हैं और समय आने पर छुरा लेकर नवजात सुअर को मारने चले आते हैं। सुअर उन्हें तुरन्त रोक देता है क्योंकि कीचड़ में लोट लगाता अब वह पूरी तरह सुखी है।

रामानुजन के अनुसार इस कहानी में पुनर्जन्म की धारणा की खिल्ली उड़ाई गई है, लेकिन 'सन्दर्भ संवेदनशीलता' के तर्कानुसार इस कहानी की एकाधिक व्याख्या सम्भव है। मनुष्य-केन्द्रीयता की ऐसी काट इस कहानी में है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस समुदाय में जो सोच जड़ हो जाती है उसे प्रवाह में लाने हेतु उसके विपरीत अर्थों का अस्तित्व में आ जाना सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया है। भारतीय लोक-कथा निधि में शायद ही कोई ऐसा तत्व हो जिसकी काट उस विश्व-दृष्टि में अपने आप अस्तित्व में नहीं आ जाती। यह कोई बड़ी बात नहीं है और इस प्रवृत्ति की पहचान को महिमा-गान नहीं समझ लिया जाना चाहिए। जाति सम्बन्धी कई कहानियाँ ऐसी हैं जिसमें स्त्री-प्रधान तत्वों का बाहुल्य है। किसी स्त्री की शादी अगर धोखे से निचली जाति में हो जाती है तो वह विकराल देवी का रूप धर विध्वंस और प्रलय की प्रतिमूर्ति बन जाती है।

ऐसी भी कहानियाँ हैं जिसमें कोई ब्राह्मण गोमांस पकाकर भेस बदल कर आए हुए भगवान शिव को खिलाता है और अपनी स्वर्णता तज देता है।

भाग्य को पराजित करने की एक अद्‌भुत तमिल कहानी है जिसमें एक शिष्य ब्रह्म से ज़िद कर अपने गुरू के पुत्र और पुत्री के भाग्य को जान लेता है। शिष्य अपनी चालें चलता है। कहानी के अन्त में निहायत थके हुए ब्रह्म शिष्य से मिलते हैं तो समझ में आता है कि वे कैसे अपने द्वारा लिखे हुए भाग्य के शिकार खुद हो गए हैं। वे हर सुबह पुत्र के छप्पर के बाहर एक भैंस को बाँधकर आने और रात में मोतियों भरा कलश लेकर गुरू की वेश्या पुत्री के प्रेमी के रूप में हाज़िर होने को विवश हो चुके हैं क्योंकि वे खुद भी उसके भाग्य को बदल नहीं सकते।

'सन्दर्भ संवेदनशील' परिदृश्य में सर्जक भी सृष्टि की तरह वध्य है – मल, मैल, मालिन्य, स्वेद-कणों से सराबोर। मनुष्य की कल्पना से निर्मित वह खुद भी मर्त्य लोक में फँस जाता है, खाँसता है, रजस्वला होता है, अपने किए को अनकिया नहीं कर पाता, और मनुष्य की कल्पना के चंगुल में फँसा हुआ है। मनुष्य स्वयं को अपने द्वारा रचे गए भाग्य के जंजाल में उलझा लेता है, फिर उससे पार पाने का जीवट जुटाता है, कहानी कहता है, और कहते-सुनते उसका समय गुज़र जाता है। भाग्य भी एक ऐसी कहानी है जो हरेक ने अपने ही मस्तक पर अलग-अलग लिपियों में लिख रखी है। उसे रूढ़ कर देना लोक की सुनम्य और सुघड़ कल्पना-शक्ति के हित में नहीं है।

V

सन्दर्भ के बाहर कथा कहने की कला

एक तरह से देखा जाए तो यह भ्रम ही है कि किसी विशेष सन्दर्भ में शिल्पित कहानी उसी सन्दर्भ की स्वायत निर्मिति है। वह बीजों की तरह कहीं और से उड़कर आई भी हो सकती है, किसी ऐसे प्रान्त से जहाँ उसका दम घुट रहा हो। किसी दूसरी संस्कृति में आकर उस कहानी में हुए रूपान्तरण से उस कहानी में अर्थों की नई अनुभूति का संचार हो सकता है। जस का तस उस कहानी को समो लिया जाना न तो सम्भव है, न वांछनीय। खड़े पानी और बहते पानी का रूपक यहाँ प्रासंगिक होगा। ऐसा सुनने में आता है कि मसलन पारिवारिक व्यभिचार की कहानियाँ बच्चों को भी सुनाई जाती हैं, ताकि वे वर्जित भावनाओं का सामना कर सकें। ज़ाहिर है कि इन कहानियों के श्रोता एक आत्मीय माहौल में इन कहानियों का श्रवण करते हैं। लेकिन ये कहानियाँ लगभग हर संस्कृति में मिलती हैं और इनमें से कई लिखित साहित्य में विश्व-प्रसिद्ध भी हुई हैं। पहले 'ईडिपस' का ज़िक्र हम कर चुके हैं जो ई.पू. पाँचवीं शताब्दी के ग्रीक नाटककार सोफोक्लीज़

की कृति है। या कह सकते हैं कि लोक में प्रचलित इस कहानी पर सोफोक्लीज़ के हस्ताक्षर भी मिलते हैं। ईडिपस की माँ योकास्टा जब इस भयावह तथ्य से परिचित होती हैं कि उसका दूसरा पति उसका अपना वही पुत्र है जिससे वह और उसका पति भविष्यवाणी के डर से निजात पा चुके थे, तो वह शोक और शर्म से पागल हो आत्महत्या कर लेती है। ईडिपस इस तथ्य को जानने पर अपनी आँखें फोड़ बाहर की ओर भागता है।

माँ-बेटे की कुछ कहानियाँ भारतीय वांगमय में भी मिलती हैं। अक्सर इन सम्बन्धों की परिणिति ईडिपस की तरह त्रासदपूर्ण होती है, हालाँकि ये कहानियाँ स्त्री-प्रधान कहानियाँ हैं, और स्त्री के दृष्टिकोण से ही कही जाती हैं। पुरुष के पेशाब, पसीने, थूक , या आँसुओं से स्त्री को गर्भ ठहर सकता है – सम्भोग का ज़िक्र कहीं नहीं होता।

एक मराठी कहानी में सतवई जो कि सबके माथे पर उनके भाग्य की इबारत को लिखती है अपनी बेटी के बार-बार ज़िद करने पर उसे उसका भाग्य बता देती है कि वह अपने बेटे से शादी करेगी। लड़की वनवास को चली जाती है, पुरुष से कभी संसर्ग न करने की ठानकर। राजा वन में से गुज़रता है तो निर्मल तालाब का पानी पीता है और कुल्ला करता है। उसी पानी को पीने से लड़की गर्भवती हो जाती है और वह बौखलाई लड़की अपने नवजात पुत्र को अपनी साड़ी के टुकड़े में लपेटकर पहाड़ से नीचे फेंक देती है।

कुछ समय बाद अकेलेपन से ऊबकर वह वापिस मनुष्यों में जाना चाहती है और उसी दम्पति के पास पहुँच जाती है जिन्हें केले के पत्तों में पड़ा वह बालक मिला था, और जो अब उनका पुत्र है। गुणवती, सुन्दर स्त्री को देख वे अपने बेटे की शादी उससे कर देते हैं। एक दिन पुराने बर्तनों के ढेर में उसे अपनी साड़ी का वही टुकड़ा मिल जाता है जिसमें उसने अपने बच्चे को लपेटा था। वह इस भयानक रहस्य के बारे में किसी से कुछ नहीं कहती, इस घटना के बाद भी पति के साथ सुख से रहती है और सास-सुसर की सेवा करती है।

रामानुजन अपने एक निबन्ध में बताते हैं कि जब नृतत्वविज्ञानी (anthropologist) सुश्री कर्वे और उनकी बेटी ने इस कहानी को एक वृद्धा के मुँह से सुना तो उन्होंने उस वृद्धा से पूछा कि उसका इस कहानी के बारे में क्या विचार है। उसने उत्तर दिया, "वह कर भी क्या सकती थी? मैडम जी, यही तो लिखा था।" मैडम कर्वे की नन्ही बेटी और कहानी सुनाने वाली महिला, दोनों ही कहानी की विचित्रता को लेकर हँसने लगीं।

मैंने इस कहानी को इसलिए उद्धृत किया है कि वर्जित भावनाओं के क्षेत्र में यह कहानी एकदम बेजोड़ है। लेकिन इतनी विचित्र कहानी को भी एक ग्रामीण मराठी बुज़ुर्ग महिला एक बच्ची

को सुनाने से गुरेज़ नहीं करती। आप इस प्रसंग को पढ़कर अनुमान लगा सकते हैं कि एक नन्ही लड़की के मन पर ऐसी कहानी का कितना गहरा असर हो सकता है। कथा कहने वाले की श्रोता बुद्धि उसकी विशेषता मानी जाती है। माँ के साथ आई बच्ची और वह वृद्धा एक माहौल में बँध गए होंगे कि ऐसी कहानी कहने-सुनने की वर्जनाएँ न रह गई होंगी, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है।

कथा चाहे खाना खिलाने, सुलाने, जगाए रखने, मनोरंजन करने, या श्रम को भुलाने के लिए कही जा रही हो, कथा कहने वाले कोई भी हों – घर के भीतर किसी परिवार से जुड़ी घर का कामकाज करने वाली कोई विधवा स्त्री, चाची, दादी, नानी – या घर के बाहर दादा, पिता, या कोई कठपुतली नचाने वाला, राम लीला, स्वांग या नाटक प्रस्तुत करने वाले -- वे सब ज़रूरत महसूस करने पर आख्यान को बदलते हैं। मान लीजिए ऊपर कही कहानी के अन्त को उस वृद्धा ने बच्ची के सामने बदल दिया हो, तो अब अपने बदले हुए रूप में ही यह कहानी रामानुजन के संकलन में दर्ज होगी। पारिवारिक सम्बन्धों की ऐसी बानगी जिसके भीषण दुष्परिणाम निकलते हों, उसके अपेक्षित अन्त को एक नया मोड़ देकर, उसका असर कम कर, उसे हँसकर सहा जा सकता है, जटिलता भले कितनी ही हो।

ये हमारा भ्रम ही है कि केवल बाल-मन ही सुकोमल, निष्कवच, और वद्य है। आम तौर पर यह सुनने में आता है कि आखिर हम बच्चों को कहाँ तक बचाएँ? यह सवाल उतना ही खाली है जितना यह सम्भावित प्रश्न कि हम बड़ों को कहाँ तक बचाएँ। लेकिन फिर भी इस विषय पर बिना कुछ सामान्यीकरण करते हुए यह कह सकते हैं कि बच्चों (और बड़ों को) किसी कहानी, प्रसंग, घटना को उसके सन्दर्भ से बाहर निकलकर सुनाना कठिन काम होता है। आपको अपनी कल्पनाशीलता से कुछ संकेत जोड़ देने होते हैं, कुछ घटाने। यह भी ज़रूरी नहीं है कि सुनाने वाला सुनने वाले से कहीं कम रक्षणीय प्राणी है। मुझे मेरी मित्र पूर्वा ने कभी मुझे बताया था कि बचपन में उन्हें भूरीबाई नाम की एक ऐसी महिला कहानी सुनाया करती थी जिनका कोई परिवार नहीं था, वे घरों में काम करती थीं, और अकेले सोने के भय से पूर्वा के परिवार में रात बिताने चली आती थीं। वे खुद को डरने से बचाती हुईं पूर्वा समेत परिवार के अन्य बच्चों को कहानी सुनाते-सुनाते सो जाया करती थीं। वयस्क उम्र में भी नरक की परिकल्पना से या अँधेरे में जाने के डर से निजात पाना कई लोगों को कठिन जान पड़ता है। इसलिए कोई जटिल कहानी हर किसी को समभाव से नहीं सुनाई जा सकती। किसी श्रोता विशेष के लिए आख्यान को बदलने का हुनर विकसित करना हमारी श्रोता बुद्धि और

संवेदनशीलता की निशानी है – इसे अन्यथा नहीं लेना चाहिए।

इसका अधिक खुलासा न करते हुए केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि सन्दर्भ से कटी हुई कहानी, जिसे उसके अपने परिवेश से बाहर आकर अपनी जगह बनानी है, कुछ अतिरिक्त संवेदन की माँग करती है। जिस परिवेश में बच्चे एक घेरे में बैठे हुए हैं और कोई स्नेहमयी स्त्री थाली में दालभात मिलाकर, हर बच्चे को बारी-बारी से एक-एक ग्रास खिला रही है, वहाँ कही गई कोई कहानी अगर किताब में छपकर किसी अकेले कमरे में पढ़ रहे किसी बच्चे के पास आती है तो इन परिस्थितियों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। बुन्देलखण्ड की ऐसी कहानियाँ जिनमें पिटाई, कत्ल, हाथ-पाँव-नाक-कान काट देना आम बातें हैं, अपने आत्मीय परिवेश से हटकर, एकदम वीभत्स प्रतीत हो सकती हैं।

ए.स. नील के अनुसार ऐसी कहानियाँ समभाव से हरेक को नहीं सुनाई जा सकतीं – उन बच्चों को तो कतई नहीं जो एकदम घबरा या डर जाते हैं। बड़े होने पर ऐसे बच्चे अपने पढ़ने लायक सामग्री का चुनाव खुद कर सकते हैं। कुछ तो आजीवन ही डरावनी कहानियाँ पढ़ने से परहेज़ करते हैं और धोखे से ऐसी किसी फिल्म का दृश्य टीवी आदि पर देख लेने भर से, उनके मन में सदा के लिए दहशत बैठ जाती है। आधुनिक युग में बड़े पैमाने पर युद्ध और औद्योगीकरण

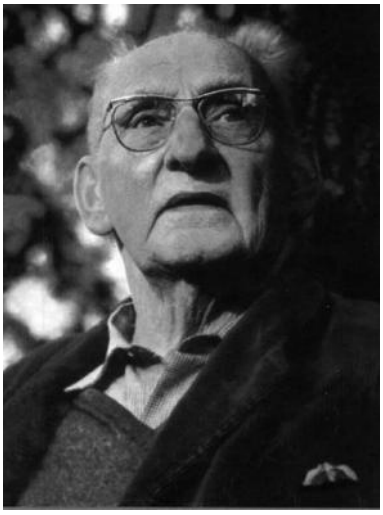

से उपजे सर्वव्यापी भय की तुलना निश्चित ही, मिसाल के तौर पर, बुन्देलखण्ड की कुछ हिंसक कहानियों से नहीं की जा सकती। किसी ने ठीक ही इस ओर इशारा किया है कि हाइड्रोजन बम की खोज तो ऐसे (बुन्देली-भाषी) परिवेश की देन नहीं है, और न ही ऐसी जीवन शैली जिसके परिणाम-स्वरूप समुद्र का स्तर बढ़कर पृथ्वी को लील लेता है। विषयान्तर चूँकि अनायास हो ही गया है, इसी बहाने भिन्न परिवेशों में उपजी कुछ शैलीगत विशिष्टताएँ भी सामने लाई जा सकती हैं।

ऊपर हम Politically Correct Bed-time Stories के लेखक की बात कर आए हैं। सभी कुछ सही कर देने की दुश्चिन्ता का मज़ाक उड़ाता हुआ यह

संग्रह ऐसे लेखन की मिसाल पेश करता है जिसमें इस उपहास के साथ-साथ इस बात को भी सुनिश्चित कर लिया गया है कि कम-से-कम समस्यामूलक विषयों पर हमारा ध्यान जाए तो। यह काम काफी कठिन है। जो सभी कुछ सही कर देने के इच्छुक हैं वे मिसाल के तौर पर Woman शब्द में man के शब्द को लेकर आपत्ति करते हैं, इस बात से कि जड़ से ही woman शब्द को man से अलग कर देना चाहिए। अपनी कहानियों में लेखक जेम्ज़ फिन्न गार्नर लगातार wommon शब्द का प्रयोग करते हैं और बहुवचन में wommyn का। अपनी लिखी किताब की परिभाषा वे ब्लर्ब पर ऐसे करते हैं: 'दिस इज़ हिज़ फर्स्ट प्रोसेस्ड ट्री कैर्केस' (यानी यह इस लेखक की प्रोसेस की हुई पहली वृक्ष लाश है)। इसे पढ़कर भले ही हमें हँसी आए (व्यंग्य की धार दोहरी है), लेकिन इस परिभाषा से हमें एक बार फिर पेड़ों और किताबों के बीच का सम्बन्ध याद आ जाता है, और किताबी कीड़े होने के बावजूद हमें दुःख होता है कि ऐसा है, भले ही हम किताबें जमा करने का मोह न छोड़ पाएँ।

लेकिन ऐसे किसी समाज में जो प्राकृतिक परिवेश के अन्तर्सम्बन्धों को आत्मसात कर कलाओं का सृजन और विस्तार करता है, वहाँ इस उद्धरण सरीखा लेखन सम्भव ही नहीं है। हम कह सकते हैं कि लोक-बुद्धि से अनुप्राणित लेखन, इन अन्तर्सम्बन्धों को दर्शाने हेतु 'पॉलिटिकली करेक्ट' श्रेणियों का सहारा नहीं लेता। ये अन्तर्सम्बन्ध आम जीवन में इस हद तक रचे-बसे होते हैं कि उनका ज्ञापन करने की ज़रूरत ही महसूस नहीं होती। कभी-कभी अनुपम मिश्र जैसे लेखक आते हैं और 'राजस्थान की रजत बूँदें' नामक अपनी पुस्तक में धीमे-से हमें बता जाते हैं कि जिस मरूभूमि में इतनी कम बारिश होती है वहाँ अलग-अलग तरह के बादलों के लिए सबसे अधिक शब्द मिलते हैं, बादल कम पड़ जाएँ इतने नाम हैं यहाँ बादलों के। बड़ी सावधानी से बनाई इस सूची में कोई भी ग्वाला चाहे जब दो-चार नाम और जोड़ देता है। 'सिखर है बड़े बादलों का नाम, तो छीतरी हैं छोटे लहरदार बादल। छितराए हुए बादलों के झुण्ड

में कुछ अलग-थलग पड़ गया छोटा-सा बादल भी उपेक्षा का पात्र नहीं है। उसका भी एक नाम है – चूँखो। दूर वर्षा के वे बादल जो ठण्डी हवा के साथ उड़कर आए हैं, उन्हें कोलायण कहा गया है। काले बादलों की छटा के आगे-आगे श्वेत पताका-सी उठाए सफेद बादल कोरण या कागोलड़ हैं...।'

प्रकृति के इन अन्तर्सम्बन्धों को शहरी परिवेश तक पहुँचाने कोई वियतनामी भिक्षु चला आता है और सहृदय के मन को और एक बहुत गहरे अन्तर्सम्बन्ध की याद दिलाकर चला जाता है:

यदि आप कवि हैं, तो आप कागज़ के इस पन्ने पर एक तैरते हुए बादल को देख सकते हैं। बादल नहीं होगा, तो बारिश नहीं होगी; बारिश नहीं होगी तो पेड़ नहीं उगेंगे; पेड़ नहीं होंगे तो हम कागज़ नहीं बना पाएँगे। कागज़ के अस्तित्व में आने के लिए बादल ज़रूरी है। अगर यहाँ बादल नहीं है, तो कागज़ का यह पन्ना भी यहाँ नहीं हो सकता।

ये उद्धरण लोक-बुद्धि से अनुप्राणित पॉलिटिकली करेक्ट लेखन के दुर्लभ उदाहरणों में से है। भक्ति और लोक के रूपक और दृष्टिकोण एक-दूसरे में रचे-बसे हैं।

देवताओं से देह धारण करने का आग्रह किया जाता है ताकि वे मनुष्य के दुख-दर्द को समझ सकें। बादल का एक सजल, सियाह टुकड़ा किताब में फँसकर ही समझ सकता है, हमने उसे अपने पन्ने पर कैद क्यों कर लिया है। देहधारी देवता ही समझ सकते हैं, मनुष्य उन्हें अस्तित्व में क्यों ले आते हैं। और 'लिखित पाठ के साथ जुड़े हुए किसी व्यक्ति को उस मौखिक सामग्री को स्थान देना होता है जो उस लिखित पाठ को घेरे हुए है' (रामानुजन)। किन्हीं आग्रहों के तहत प्रचलित कथा को बदलने और श्रोता-बुद्धि के सहारे पाठ को सुनम्य बनाने में काफी अन्तर होता है। और इसे हम लोक-सामग्री का उपयोग करने वाले के विवेक पर छोड़ देते हैं।

तेजी ग्रोवर: हिन्दी कवि, कथाकार एवं अनुवादक। बाल-साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में गहरी रुचि। पिछले कुछ वर्षों से चित्रकला भी कर रही हैं। कई वर्ष ज़िला होशंगाबाद में किशोर भारती नामक ग्रामीण संस्था में काम।

यह लेख इस विषय पर तेजी ग्रोवर द्वारा लिखे गए एक विस्तृत आलेख का एक हिस्सा है। इस आलेख का एक भाग हम संदर्भ अंक-59 में 'अक्कम से पुरम तक' और दूसरा भाग संदर्भ अंक-85 में 'एक कहानी और एक गीत' के नाम से प्रकाशित कर चुके हैं।